JETIR.ORG ISSN: 2349-5162 | ESTD Year : 2014 | Monthly Issue
JOURNAL OF EMERGING TECHNOLOGIES AND INNOVATIVE RESEARCH (JETIR)
An International Scholarly Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

महानिर्वाणतन्त्र में ब्रह्म-विवेचन : उपनिषद् एवं भगवद्गीता के विशेष सन्दर्भ में

शोधार्थी संदीप कुमार
शोध निर्देशक डॉ.लता देवी
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय
समरहिल शिमला-5

DOI: https://doi.org/10.56975/jetir.v12i10.585186

सारांश

भारतीय दर्शन में ब्रह्म को परम सत्य, जगत् के मूल आधार तथा समस्त चेतन-अचेतन सत्ता के अन्तिम तत्त्व के रूप में स्वीकार किया गया है। उपनिषदों में ब्रह्म का विवेचन मुख्यतः निर्गुण, अतीन्द्रिय, अवाङ्मनसगोचर तथा सर्वव्यापक सत्ता के रूप में मिलता है। भगवद्गीता में यही परम तत्त्व क्षर, अक्षर और पुरुषोत्तम के माध्यम से व्याख्यायित होता है। महानिर्वाणतन्त्र में ब्रह्म-विचार इन दोनों दार्शनिक परम्पराओं से संवाद करता हुआ दिखाई देता है, किन्तु उसकी अपनी विशिष्ट तान्त्रिक दृष्टि भी है। महानिर्वाणतन्त्र ब्रह्म को एक, अद्वैत, परात्पर, स्वप्रकाश, सच्चिदानन्द, निर्विकार, निर्गुण, सर्वव्यापक तथा सर्वात्मस्वरूप बताता है। वह मन और वाणी से परे होते हुए भी समस्त जगत् का कारण और आधार है। सम्पूर्ण देवता, लोक तथा चराचर जगत् उसी से व्याप्त हैं। तन्त्र में ब्रह्म का सम्बन्ध केवल दार्शनिक चिन्तन से नहीं, बल्कि उपासना, साधना, समाधि और मुक्ति से भी जोड़ा गया है। प्रस्तुत शोध-पत्र में महानिर्वाणतन्त्र के ब्रह्म-विवेचन को मुख्य आधार बनाकर केनोपनिषद्, कठोपनिषद्, मुण्डकोपनिषद् तथा भगवद्गीता के चयनित प्रसंगों से उसका तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि महानिर्वाणतन्त्र में ब्रह्म का स्वरूप उपनिषदों के निर्गुण-अतीन्द्रिय ब्रह्म से गहरे रूप में जुड़ा है, जबकि भगवद्गीता के पुरुषोत्तम और परमात्मा से भी उसकी पर्याप्त साम्यता दिखाई देती है। साथ ही तन्त्र की विशेषता यह है कि वह ब्रह्म को शक्ति, देवता, जगत् और साधना की तान्त्रिक संरचना के भीतर अधिक व्यावहारिक रूप में प्रस्तुत करता है।

बीजशब्द: महानिर्वाणतन्त्र, ब्रह्म, परब्रह्म, सच्चिदानन्द, अद्वैत, उपनिषद्, भगवद्गीता, पुरुषोत्तम, ब्रह्मज्ञान, तन्त्र।

1. प्रस्तावना

भारतीय दार्शनिक परम्परा में 'ब्रह्म' की अवधारणा अत्यन्त व्यापक है। ब्रह्म को सामान्य रूप से किसी सीमित वस्तु, व्यक्ति या देवता के रूप में नहीं समझा जा सकता। वह परम तत्त्व है जिसके आधार पर जगत् की सत्ता, चेतना और व्यवस्था को समझने का प्रयास किया जाता है। उपनिषदों ने ब्रह्म को कभी 'नेति-नेति' के माध्यम से निषेधात्मक रूप में, कभी सर्वव्यापक आत्मतत्त्व के रूप में और कभी समस्त ज्ञान-क्रियाओं के आधार के रूप में प्रस्तुत किया है। भगवद्गीता में ब्रह्म-विचार को आत्मा, परमात्मा और पुरुषोत्तम के व्यापक दार्शनिक संदर्भ में रखा गया है।

महानिर्वाणतन्त्र का ब्रह्म-विवेचन इसी भारतीय दार्शनिक पृष्ठभूमि में विशेष महत्त्व रखता है। इसमें ब्रह्म को केवल एक दार्शनिक सिद्धान्त के रूप में नहीं, बल्कि साधना और मुक्ति से सम्बद्ध परम तत्त्व के रूप में प्रस्तुत किया गया है। द्वितीय उल्लास में ब्रह्म के स्वरूप, उसकी व्यापकता, जगत् के साथ उसके सम्बन्ध तथा देवताओं की वास्तविक स्थिति का विवेचन मिलता है। तृतीय उल्लास में देवी स्वयं परब्रह्म के स्वरूप, उसकी उपासना, साधना और ध्यान के विषय में प्रश्न करती हैं। इस प्रकार महानिर्वाणतन्त्र में ब्रह्म-विचार का स्वरूप दार्शनिक होने के साथ-साथ साधनात्मक भी है।

2. महानिर्वाणतन्त्र में ब्रह्म का अद्वैत एवं सच्चिदानन्द स्वरूप

महानिर्वाणतन्त्र के ब्रह्म-विवेचन की शुरुआत ही ब्रह्म की परम एवं अद्वैत सत्ता से होती है-

स एक एव सद्रूपः सत्योऽद्वैतः परात्परः ।

स्वप्रकाशः सदापूर्णः सच्चिदानन्दलक्षणः ॥

इस श्लोक में ब्रह्म के लिए अनेक महत्वपूर्ण विशेषण प्रयुक्त हुए हैं-'एक', 'सद्रूप', 'सत्य', 'अद्वैत', 'परात्पर', 'स्वप्रकाश', 'सदापूर्ण' और 'सच्चिदानन्दलक्षण'। इन सभी को एक साथ देखने पर ब्रह्म की ऐसी सत्ता सामने आती है जो किसी दूसरी सत्ता पर निर्भर नहीं है। वह स्वयं में पूर्ण है और उसके अतिरिक्त कोई दूसरा परम तत्त्व स्वीकार नहीं किया गया है।

'एक' और 'अद्वैत' पद ब्रह्म की अद्वितीयता को प्रकट करते हैं। 'परात्पर' उसे सभी सीमित एवं सापेक्ष सताओं से ऊपर स्थापित करता है। 'स्वप्रकाश' का अर्थ यह है कि ब्रह्म को प्रकाशित करने के लिए किसी दूसरी सत्ता की आवश्यकता नहीं है। वहीं 'सच्चिदानन्द' ब्रह्म के सकारात्मक स्वरूप की ओर संकेत करता है। इस प्रकार महानिर्वाणतन्त्र ब्रह्म को केवल निषेधों के माध्यम से परिभाषित नहीं करता, बल्कि उसके अस्तित्व, चेतना और आनन्दात्मक स्वरूप को भी स्वीकार करता है।[i]

यहाँ उपनिषद्-परम्परा से स्पष्ट साम्य दिखाई देता है। उपनिषदों में भी ब्रह्म को सामान्य विषय-वस्तु से भिन्न ऐसी चेतन सत्ता माना गया है जो समस्त अनुभव की आधारभूमि है। इस अर्थ में महानिर्वाणतन्त्र का 'स्वप्रकाश' ब्रह्म उपनिषदों के उस ब्रह्म-विचार के निकट दिखाई देता है जिसमें ब्रह्म स्वयं ज्ञान का आधार है।

3. निर्विकार, निर्गुण और सर्वसाक्षी ब्रह्म

महानिर्वाणतन्त्र में ब्रह्म के स्वरूप को और स्पष्ट करता है हुए कहा गया है-

निर्विकारो निराधारो निर्विशेषो निराकुलः ।

गुणातीतः सर्वसाक्षी सर्वात्मा सर्वदृग्विभुः ॥

यहाँ ब्रह्म के स्वरूप को मुख्यतः निषेधात्मक और व्यापक दोनों प्रकार से प्रस्तुत किया गया है। वह निर्विकार है, अर्थात् उसमें परिवर्तन नहीं होता। वह निराधार है, क्योंकि उसे स्वयं किसी अन्य आधार की आवश्यकता नहीं है। निर्विशेष और निराकुल होने के कारण वह किसी सीमित विशेषता में बँधा हुआ नहीं है। 'गुणातीत' पद उसे प्रकृति के गुणों से भी परे रखता है।

इसके साथ ही ब्रह्म को 'सर्वसाक्षी', 'सर्वात्मा' और 'सर्वदृग्विभु' कहा गया है। यहाँ एक महत्वपूर्ण दार्शनिक परिवर्तन दिखाई देता है। ब्रह्म एक ओर सभी विशेषताओं से परे है, दूसरी ओर सभी के भीतर आत्मरूप से स्थित है। वह किसी एक वस्तु के भीतर सीमित नहीं है, बल्कि समस्त सत्ता का साक्षी और आधार है।[ii]

केनोपनिषद् में भी इसी प्रकार ब्रह्म को इन्द्रियों और मन के पीछे स्थित चेतना के रूप में बताया गया है-

श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्वाचो ह वाचं स उ प्राणस्य प्राणः।

चक्षुषश्चक्षुरतिमुच्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति॥

यहाँ ब्रह्म को कान का कान, मन का मन, वाणी की वाणी, प्राण का प्राण और नेत्र का नेत्र कहा गया है। अर्थात् इन्द्रियाँ स्वयं ब्रह्म को नहीं जानतीं, बल्कि उनकी ज्ञान-शक्ति का आधार ब्रह्म है।[iii] महानिर्वाणतन्त्र का 'सर्वसाक्षी' और 'सर्वात्मा' ब्रह्म इसी प्रकार बाह्य अनुभव के पीछे स्थित चेतन आधार की ओर संकेत करता है।

4. सर्वव्यापक और इन्द्रियातीत ब्रह्म

महानिर्वाणतन्त्र में ब्रह्म को सभी प्राणियों के भीतर स्थित तथा साथ ही इन्द्रियातीत बताया गया है-

गूढः सर्वेषु भूतेषु सर्वव्यापी सनातनः ।

सर्वेन्द्रियगुणाभासः सर्वेन्द्रियविवर्जितः ॥

यहाँ 'गूढः सर्वेषु भूतेषु' ब्रह्म के अन्तर्यामित्व की ओर संकेत करता है। ब्रह्म सबमें स्थित है, किन्तु सामान्य दृष्टि से दिखाई नहीं देता। 'सर्वव्यापी' और 'सनातन' उसके व्यापक तथा नित्य स्वरूप को व्यक्त करते हैं। दूसरी ओर 'सर्वेन्द्रियविवर्जित' बताता है कि वह स्वयं किसी इन्द्रिय का विषय नहीं है।[iv]

केनोपनिषद् में यही विचार अधिक स्पष्ट रूप में मिलता है-

न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यात्। अन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि इति शुश्रुम पूर्वेषां ये नस्तद्व्याचचक्षिरे॥

यहाँ ब्रह्म को चक्षु, वाणी और मन की पहुँच से परे बताया गया है। ब्रह्म ज्ञात और अज्ञात दोनों से विलक्षण है। महानिर्वाणतन्त्र और केनोपनिषद् दोनों में ब्रह्म की यही विशेषता सामने आती है कि वह इन्द्रियों से ग्रहण किए जाने वाला कोई सामान्य पदार्थ नहीं है।

केनोपनिषद् के अन्य श्लोक में भी इसी प्रकार से ब्रह्म को बताया गया है-

यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते। तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥

ब्रह्म वाणी द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता, बल्कि वाणी की अभिव्यक्ति-शक्ति का आधार वही है।इसी प्रकार मन, चक्षु, श्रोत्र और प्राण के विषय में भी कहा गया है कि ब्रह्म इनका विषय नहीं, बल्कि इनके कार्य का मूल आधार है।[v] इससे महानिर्वाणतन्त्र के 'सर्वेन्द्रियविवर्जित' और 'अवाङ्मनसगोचर' ब्रह्म की उपनिषदों से निकटता स्पष्ट होती है।

5. लोकातीत, सर्वज्ञ और अवाङ्मनसगोचर ब्रह्म

महानिर्वाणतन्त्र में आगे कहा गया है-

लोकातीतो लोकहेतुरवाङ्मनसगोचरः । स वेत्ति विश्वं सर्वज्ञस्तं न जानाति कश्चन॥

इस श्लोक में ब्रह्म का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विरोधाभासी प्रतीत होने वाला स्वरूप सामने आता है। वह 'लोकातीत' है, अर्थात् संसार से परे है; किन्तु उसी समय 'लोकहेतु' भी है, अर्थात् संसार का कारण है। वह सम्पूर्ण विश्व को जानता है, परन्तु कोई उसे पूर्णतः जान नहीं सकता। इसका अर्थ यह नहीं है कि ब्रह्म अज्ञेय होने के कारण शून्य है। बल्कि वह सामान्य ज्ञाता-ज्ञेय सम्बन्ध से परे परम चेतना है।[vi]

केनोपनिषद् के **"यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम्"** में भी यही बात मिलती है। ब्रह्म को मन द्वारा विचारित वस्तु न मानकर मन की विचार-शक्ति का आधार माना गया है। इसी प्रकार **"यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूंषि पश्यन्ति"** में ब्रह्म को देखने योग्य वस्तु न मानकर देखने की शक्ति का आधार कहा गया है। इस दृष्टि से महानिर्वाणतन्त्र का ब्रह्म सामान्य ज्ञान का विषय न होकर ज्ञान की परम आधार-सत्ता है।[vii]

6. ब्रह्म और जगत् का सम्बन्ध

महानिर्वाणतन्त्र ब्रह्म और जगत् के सम्बन्ध को स्पष्ट करते हुए कहता है-

तदधीनं जगत् सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम्। तदालम्बनतस्तिष्ठेदवितर्क्यमिदं जगत्॥

सम्पूर्ण चराचर जगत् ब्रह्म के अधीन है। तीनों लोक उसी के आधार पर स्थित हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि जगत् की सत्ता स्वतन्त्र नहीं है। उसकी स्थिति के पीछे एक परम आधार स्वीकार किया गया है।[viii]

मुण्डकोपनिषद् में भी इसी प्रकार ब्रह्म को विश्व की उत्पत्ति और लय का आधार माना गया है-

यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च यथा पृथिव्यामोषधयः सम्भवन्ति।

यथा सतः पुरुषात् केशलोमानि तथाक्षरात् सम्भवतीह विश्वम्॥

मकड़ी के अपने शरीर से जाल के उत्पन्न होने और पुनः उसी में समा जाने का उदाहरण देकर विश्व की उत्पत्ति को अक्षर से सम्बन्धित किया गया है।[ix] इस प्रकार उपनिषद् और महानिर्वाणतन्त्र दोनों में परम तत्त्व और जगत् के बीच कारण-कार्य सम्बन्ध स्थापित होता है।

महानिर्वाणतन्त्र का विशेष पक्ष यह है कि वह ब्रह्म को केवल जगत् के बाहर स्थित कारण नहीं मानता, बल्कि आगे सम्पूर्ण जगत् को उसी से व्याप्त बताता है। अतः यहाँ कारण और व्यापक आधार-दोनों पक्षों को एक साथ देखा जा सकता है।

7. एक ब्रह्म और अनेक रूपों का जगत्

महानिर्वाणतन्त्र में कहा गया है-

तत्सत्यतामुपाश्रित्य सद्वद्भाति पृथक् पृथक्। तेनैव हेतुभूतेन वयं जाता महेश्वरि॥

विभिन्न पदार्थ पृथक्-पृथक् दिखाई देते हैं, किन्तु उनका अस्तित्व उस एक परम सत्य पर आश्रित है। यह विचार महानिर्वाणतन्त्र के अद्वैत पक्ष को और अधिक स्पष्ट करता है। जगत् में अनेकता दिखाई देती है, लेकिन उस अनेकता की सत्ता के पीछे एक ही परम आधार है।[x]

कठोपनिषद् में इसी भाव को अग्नि के उदाहरण से समझाया गया है-

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।

एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च॥

जिस प्रकार एक अग्नि विभिन्न पदार्थों में प्रवेश करके अलग-अलग रूपों में दिखाई देती है, उसी प्रकार एक परमात्मा सभी प्राणियों के भीतर स्थित होकर अनेक रूपों में दिखाई देता है।[xi] महानिर्वाणतन्त्र का यह विचार उपनिषद् के इस सिद्धान्त के साथ पर्याप्त साम्य रखता है कि विविध रूपों के पीछे एक ही परम तत्त्व विद्यमान है।

8. ब्रह्म ही समस्त देवताओं और जगत् का मूल कारण

महानिर्वाणतन्त्र ब्रह्म और देवताओं के सम्बन्ध को भी अत्यन्त स्पष्ट रूप में प्रस्तुत करता है-

कारणं सर्वभूतानां स एकः परमेश्वरः ।

लोकेषु सृष्टिकरणात् स्रष्टा ब्रह्मेति गीयते ॥

विष्णुः पालयिता देवि संहर्ताऽहं तदिच्छया ।

इन्द्रादयो लोकपालाः सर्वे तद्वशवर्तिनः ॥

स्वे स्वेऽधिकारे निरतास्ते शासति तदाज्ञया ।

त्वं परा प्रकृतिस्तस्य पूज्याऽसि भुवनत्रये ॥

यहाँ महानिर्वाणतन्त्र का एक विशिष्ट तान्त्रिक-दर्शन सामने आता है। परमेश्वर को समस्त भूतों का एकमात्र कारण बताया गया है। उसी परम सत्ता की इच्छा से सृष्टि, पालन और संहार की विभिन्न शक्तियाँ कार्य करती हैं। ब्रह्मा सृष्टिकर्ता, विष्णु पालक और शिव संहारकर्ता के रूप में कार्य करते हैं। इसका अर्थ यह है कि देवताओं में दिखाई देने वाली भिन्नता के पीछे एक ही परम सत्ता कार्यरत है।[xii]

यहाँ भगवद्गीता के पुरुषोत्तम-विचार से तुलना उपयोगी है। गीता कहती है-

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।

यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः॥

साधक-संजीवनी के अनुसार उत्तम पुरुष ही परमात्मा है, जो लोकत्रय में प्रवेश करके उसका भरण-पोषण करने वाला अव्यय ईश्वर है ।महानिर्वाणतन्त्र में भी परम सत्ता को समस्त देवताओं के पीछे कार्य करने वाली सर्वोच्च सत्ता माना गया है। अन्तर यह है कि गीता में यह विचार 'पुरुषोत्तम' और 'परमात्मा' की संज्ञा से सामने आता है, जबकि महानिर्वाणतन्त्र इसे देवताओं की तान्त्रिक व्यवस्था के भीतर स्पष्ट करता है।[xiii]

9. ब्रह्म का अन्तर्यामित्व तथा काल-मृत्यु से परे सत्ता

महानिर्वाणतन्त्र ब्रह्म को अन्तर्यामी बताते हुए कहता है-

तेनान्तर्यामिरूपेण तत्तद्विषययोजिताः ।

स्वस्वकर्म प्रकुर्वन्ति न स्वतन्त्राः कदाचन ॥

यद्भयाद्वाति वातोऽपि सूर्यस्तपति यद्भयात् ।

वर्षन्ति तोयदाः काले पुष्पन्ति तरवो वने ॥

समस्त प्राणी अपने-अपने कर्म करते हैं, किन्तु पूर्णतः स्वतन्त्र नहीं हैं। ब्रह्म अन्तर्यामी के रूप में उनके कार्यों का आधार है। प्राकृतिक शक्तियाँ भी उसी परम व्यवस्था के अनुसार कार्य करती हैं। इससे ब्रह्म केवल जीवों का अन्तरात्मा ही नहीं, बल्कि विश्व-व्यवस्था का नियामक भी सिद्ध होता है।

ब्रह्म की सर्वोच्चता को और स्पष्ट करते हुए कहा गया है-

कालं कालयते काले मृत्योर्मृत्युर्भियो भयम्।

वेदान्तवेद्यो भगवान् यत्तच्छब्दोपलक्षितः॥

यहाँ ब्रह्म को 'काल का काल' और 'मृत्यु की मृत्यु' कहा गया है। अर्थात् जिस सत्ता के अधीन काल और मृत्यु भी हैं, वह स्वयं काल और मृत्यु की सीमा से परे है। उसे 'वेदान्तवेद्य भगवान्' कहा गया है। इस प्रकार महानिर्वाणतन्त्र ब्रह्म की सर्वोच्चता को केवल जगत् के कारण होने के कारण नहीं, बल्कि काल और मृत्यु से परे होने के कारण भी स्थापित करता है।[xiv]

कठोपनिषद् में भी आत्मतत्त्व को अज, नित्य, शाश्वत और अविनाशी कहा गया है—

न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्।

अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥

इस प्रकार महानिर्वाणतन्त्र के 'मृत्योर्मृत्यु' और कठोपनिषद् के 'अजो नित्यः शाश्वतः' में परम तत्त्व की नित्यता और मृत्यु से परे स्थिति का स्पष्ट साम्य दिखाई देता है।[xv]

10. सम्पूर्ण जगत् ब्रह्ममय

महानिर्वाणतन्त्र का ब्रह्म-विवेचन अपने व्यापकतम रूप में तब दिखाई देता है जब वह सम्पूर्ण जगत् को ब्रह्ममय घोषित करता है-

सर्वे देवाश्च देव्यश्च तन्मयाः सुरवन्दिते।

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं तन्मयं सकलं जगत्॥

यहाँ ब्रह्म केवल जगत् का बाहरी कारण नहीं रह जाता। देवता, देवियाँ तथा ब्रह्मा से लेकर सूक्ष्मतम वनस्पति तक सम्पूर्ण जगत् उसी से व्याप्त बताया गया है। इसलिए महानिर्वाणतन्त्र में ब्रह्म की सत्ता को जगत् से पूर्णतः अलग करके समझना उचित नहीं होगा। जगत् की विविधता के पीछे ब्रह्म की एकता विद्यमान है।[xvi]

कठोपनिषद् का **"एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा"** भी इसी दिशा में संकेत करता है।दोनों में परम तत्त्व की सर्वव्यापकता स्वीकार की गई है। महानिर्वाणतन्त्र का विशेष पक्ष यह है कि वह इस सर्वव्यापकता को अपनी तान्त्रिक देवता-व्यवस्था के साथ जोड़ देता है। परिणामतः विभिन्न देवताओं की आराधना भी अन्ततः उसी परम तत्त्व की ओर संकेत करती है।

11. ब्रह्म, उपासना और मुक्ति

महानिर्वाणतन्त्र में ब्रह्म-विचार केवल दार्शनिक चर्चा नहीं है बल्कि कहा गया है-

तस्मिंस्तुष्टे जगत्तुष्टं प्रीणिते प्रीणितं जगत्।

तदाराधनतो देवि सर्वेषां प्रीणनं भवेत्॥

परम तत्त्व की प्रसन्नता को सम्पूर्ण जगत् की प्रसन्नता के समान माना गया है। इससे स्पष्ट होता है कि ब्रह्म की आराधना को व्यापक कल्याण से जोड़ा गया है।

देवी स्वयं परम ब्रह्म के विषय में प्रश्न करती हैं-

देवदेव महादेव देवतानां गुरोर्गुरो।

वक्ता त्वं सर्वशास्त्राणां मन्त्राणां साधनस्य च॥

कथितं यत् परं ब्रह्म परमेशं परात्परम्।

यस्योपासनतो मर्त्यो भुक्तिं मुक्तिञ्च विन्दति॥

यहाँ 'परं ब्रह्म', 'परमेश' और 'परात्पर' एक ही परम सत्ता की ओर संकेत करते हैं। विशेष रूप से यह कहा गया है कि उसकी उपासना से मनुष्य भुक्ति और मुक्ति दोनों प्राप्त करता है। इसलिए महानिर्वाणतन्त्र में ब्रह्म का ज्ञान संसार से पलायन मात्र नहीं है; वह साधक के आध्यात्मिक और लौकिक दोनों पक्षों से सम्बद्ध है।

देवी आगे पूछती हैं-

केनोपायेन भगवन् परमात्मा प्रसीदति।

किं तस्य साधनं देव मन्त्रः को वा प्रकीर्तितः॥

किं ध्यानं किं विधानञ्च परस्य परमात्मनः।

तत्त्वेन श्रोतुमिच्छामि कृपया कथय प्रभो॥

इससे ब्रह्म-विचार के साथ मन्त्र, ध्यान, साधना और उपासना का सम्बन्ध स्पष्ट होता है। महानिर्वाणतन्त्र का यह पक्ष उसे केवल सैद्धान्तिक अद्वैत-विवेचन से आगे ले जाकर साधनात्मक दर्शन का रूप देता है।[xvii]

12. सच्चिद्विश्वमय ब्रह्म और उसका तात्त्विक स्वरूप

श्रीसदाशिव देवी को ब्रह्म के स्वरूप का रहस्य बताते हुए कहते हैं-

अतिगुह्यं परं तत्त्वं शृणु मत्प्राणवल्लभे।

रहस्यमेतत् कल्याणि न कुत्रापि प्रकाशितम्।

तव स्नेहेन वक्ष्यामि मम प्राणाधिकं परम्॥

ज्ञेयं भवति तद्ब्रह्म सच्चिद्विश्वमयं परम्।

तथा तत्त्वस्वरूपेण लक्षणैर्वा महेश्वरि॥

यहाँ 'सच्चिद्विश्वमय' पद अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। पहले ब्रह्म को 'सच्चिदानन्दलक्षण' कहा गया था और यहाँ उसे 'सच्चिद्विश्वमय' कहा गया है। इससे ब्रह्म की सत्ता और विश्व के बीच सम्बन्ध का अधिक व्यापक रूप सामने आता है।

ब्रह्म के स्वरूप को और अधिक स्पष्ट किया गया है-

सत्तामात्रं निर्विशेषमवाङ्मनसगोचरम् ।

असत्त्रिलोकीसद्भानं स्वरूपं ब्रह्मणः स्मृतम् ॥

ब्रह्म 'सत्तामात्र' है, 'निर्विशेष' है और 'अवाङ्मनसगोचर' है। साथ ही त्रिलोक की सत्ता का प्रकाशन उसी के कारण होता है। यह कथन महानिर्वाणतन्त्र के ब्रह्म-विवेचन का दार्शनिक केन्द्र माना जा सकता है। ब्रह्म स्वयं सामान्य दृश्य जगत् की वस्तु नहीं है, लेकिन उसी के कारण जगत् का अस्तित्व और प्रकाशन सम्भव है।[xviii]

यह विचार केनोपनिषद् के "**येन मनो मतम्**" और "**येन वागभ्युद्यते**" से निकट सम्बन्ध रखता है। दोनों परम्पराएँ ब्रह्म को सामान्य ज्ञेय वस्तु न मानकर ज्ञान और अनुभव के मूल आधार के रूप में स्वीकार करती हैं।[xix]

13. ब्रह्मज्ञान की साधना : समाधि, समदृष्टि और आन्तरिक शुद्धि

महानिर्वाणतन्त्र ब्रह्म के ज्ञान के लिए साधना-पद्धति भी बताता है-

समाधियोगैस्तद्वेद्यं सर्वत्र समदृष्टिभिः ।

द्वन्द्वातीतैर्निर्विकल्पैर्देहात्माध्यासवर्जितैः ॥

यहाँ ब्रह्मज्ञान के लिए चार प्रमुख अवस्थाओं की ओर संकेत मिलता है-समाधियोग, समदृष्टि, द्वन्द्वातीत अवस्था और देहात्म-अध्यास का अभाव। इससे स्पष्ट होता है कि ब्रह्म का ज्ञान केवल शास्त्र पढ़ने से प्राप्त होने वाला बौद्धिक ज्ञान नहीं है। साधक को अपने दृष्टिकोण और अन्तःकरण में परिवर्तन लाना आवश्यक है।[xx]

कठोपनिषद् भी इसी बात को दूसरे रूप में प्रस्तुत करता है-

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः ।

नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात् ॥

दुश्चरित्र से निवृत्ति, मन की शान्ति, इन्द्रिय-संयम और समाधि के बिना केवल बुद्धि के द्वारा परमात्मा को प्राप्त नहीं किया जा सकता है।[xxi] इस प्रकार महानिर्वाणतन्त्र का 'समाधियोग' और 'देहात्माध्यासवर्जित' साधक कठोपनिषद् के शान्त, संयमित और समाधिस्थ साधक से तुलनीय है।

15. निष्कर्ष

महानिर्वाणतन्त्र के ब्रह्म-विवेचन का अध्ययन करने पर यह स्पष्ट होता है कि यहाँ ब्रह्म को किसी एक देवता या सीमित धार्मिक अवधारणा तक सीमित नहीं किया गया है। वह एक, अद्वैत, परात्पर, स्वप्रकाश, पूर्ण और सच्चिदानन्दस्वरूप है। वह निर्विकार, निराधार, निर्विशेष और गुणातीत है, फिर भी सर्वसाक्षी, सर्वात्मा और सर्वदृग् है। वह सभी प्राणियों में स्थित है, किन्तु स्वयं इन्द्रियों का विषय नहीं है। वह लोक से परे है, फिर भी लोक का कारण है। वह सम्पूर्ण विश्व को जानता है, परन्तु कोई उसे पूर्णतः नहीं जान सकता।

महानिर्वाणतन्त्र का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पक्ष ब्रह्म और जगत् के सम्बन्ध में दिखाई देता है। सम्पूर्ण चराचर जगत् ब्रह्म के अधीन और उसी के आश्रय पर स्थित है। आगे सम्पूर्ण देवताओं, देवियों तथा ब्रह्मा से लेकर स्तम्ब तक के जगत् को ब्रह्ममय कहा गया है। इससे स्पष्ट होता है कि तन्त्र में ब्रह्म केवल जगत् का कारण नहीं, बल्कि जगत् में व्यापक रूप से उपस्थित परम सत्ता भी है।

देवताओं के सम्बन्ध में भी तन्त्र एकत्व की स्थापना करता है। ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा अन्य लोकपाल अलग-अलग कार्य करते हुए भी उसी परमेश्वर की आज्ञा के अधीन हैं। इस प्रकार अनेक देवताओं के पीछे एक परम सत्ता को स्वीकार किया गया है। यही विचार महानिर्वाणतन्त्र के अद्वैतवादी पक्ष को स्पष्ट करता है।

उपनिषदों के साथ तुलना करने पर महानिर्वाणतन्त्र का ब्रह्म-विवेचन भारतीय उपनिषद्-परम्परा से गहरे रूप में जुड़ा हुआ दिखाई देता है। केनोपनिषद् का इन्द्रिय-मन-वाणी से परे ब्रह्म, कठोपनिषद् का अज और नित्य आत्मतत्त्व तथा मुण्डकोपनिषद् का विश्व के मूल कारण के रूप में अक्षर-इन सभी विचारों के साथ महानिर्वाणतन्त्र के ब्रह्म-विचार में स्पष्ट साम्य दिखाई देता है। विशेष रूप से 'अवाङ्मनसगोचर', 'सर्वव्यापक', 'अन्तर्यामी', 'जगत्कारण' और 'अविनाशी' जैसी विशेषताएँ दोनों परम्पराओं को जोड़ती हैं।

भगवद्गीता के साथ तुलना करने पर क्षर-अक्षर-पुरुषोत्तम की त्रिस्तरीय संरचना और महानिर्वाणतन्त्र के ब्रह्म-विवेचन के बीच भी सार्थक सम्बन्ध दिखाई देता है। गीता का पुरुषोत्तम लोकत्रय में व्याप्त अव्यय ईश्वर है, जबकि महानिर्वाणतन्त्र का ब्रह्म सम्पूर्ण जगत् का आधार, नियामक और सर्वव्यापक परम तत्त्व है। दोनों परम्पराएँ परम सत्ता को नश्वर जगत् से ऊपर तथा उसके आधार के रूप में स्वीकार करती हैं।

फिर भी महानिर्वाणतन्त्र की अपनी विशेषता है। यहाँ ब्रह्म-विचार केवल तात्त्विक चर्चा नहीं है। ब्रह्म की उपासना, मन्त्र, ध्यान, समाधि, समदृष्टि, देहात्म-अध्यास का त्याग तथा भुक्ति-मुक्ति की प्राप्ति के साथ इसे जोड़ा गया है। इसलिए महानिर्वाणतन्त्र में ब्रह्म दर्शन का विषय होने के साथ-साथ साधना का लक्ष्य और आध्यात्मिक अनुभव का परम आधार भी है।

अन्ततः कहा जा सकता है कि महानिर्वाणतन्त्र का ब्रह्म-विवेचन उपनिषदों के निर्गुण, अतीन्द्रिय और सर्वव्यापक ब्रह्म-विचार तथा भगवद्गीता के परमात्मा-पुरुषोत्तम के साथ संवाद स्थापित करता है, परन्तु उसे तान्त्रिक साधना, देवता-तत्त्व और शक्ति-दृष्टि के साथ जोड़कर एक विशिष्ट रूप प्रदान करता है। इसीलिए महानिर्वाणतन्त्र में ब्रह्म केवल 'जानने योग्य' परम तत्त्व नहीं है, बल्कि जिसकी अनुभूति, उपासना और साक्षात्कार से साधक भुक्ति और मुक्ति दोनों की दिशा में अग्रसर होता है।

संदर्भ-सूची

[i] उत्तम, अजय कुमार, संपादक। महानिर्वाणतन्त्रम्: कुलावधूत हरिहरानन्दभारतीकृत संस्कृत टीका तथा 'पद्मा' हिन्दी व्याख्या सहित। भारतीय विद्या संस्थान, 2006।

[ii] उत्तम, अजय कुमार, संपादक। महानिर्वाणतन्त्रम्: कुलावधूत हरिहरानन्दभारतीकृत संस्कृत टीका तथा 'पद्मा' हिन्दी व्याख्या सहित। भारतीय विद्या संस्थान, 2006।

[iii] गोयन्दका, हरिकृष्णदास। ईशादि नौ उपनिषद्। गीता प्रेस, गोरखपुर, संवत् २०७४, छत्तीसवाँ पुनर्मुद्रण।

[iv] उत्तम, अजय कुमार, संपादक। महानिर्वाणतन्त्रम्: कुलावधूत हरिहरानन्दभारतीकृत संस्कृत टीका तथा 'पद्मा' हिन्दी व्याख्या सहित। भारतीय विद्या संस्थान, 2006।

[v] गोयन्दका, हरिकृष्णदास। ईशादि नौ उपनिषद्। गीता प्रेस, गोरखपुर, संवत् २०७४, छत्तीसवाँ पुनर्मुद्रण।

[vi] उत्तम, अजय कुमार, संपादक। महानिर्वाणतन्त्रम्: कुलावधूत हरिहरानन्दभारतीकृत संस्कृत टीका तथा 'पद्मा' हिन्दी व्याख्या सहित। भारतीय विद्या संस्थान, 2006।

[vii] गोयन्दका, हरिकृष्णदास। ईशादि नौ उपनिषद्। गीता प्रेस, गोरखपुर, संवत् २०७४, छत्तीसवाँ पुनर्मुद्रण।

[viii] उत्तम, अजय कुमार, संपादक। महानिर्वाणतन्त्रम्: कुलावधूत हरिहरानन्दभारतीकृत संस्कृत टीका तथा 'पद्मा' हिन्दी व्याख्या सहित। भारतीय विद्या संस्थान, 2006।

[ix] गोयन्दका, हरिकृष्णदास। ईशादि नौ उपनिषद्। गीता प्रेस, गोरखपुर, संवत् २०७४, छत्तीसवाँ पुनर्मुद्रण।

[x] उत्तम, अजय कुमार, संपादक। महानिर्वाणतन्त्रम्: कुलावधूत हरिहरानन्दभारतीकृत संस्कृत टीका तथा 'पद्मा' हिन्दी व्याख्या सहित। भारतीय विद्या संस्थान, 2006।

[xi] गोयन्दका, हरिकृष्णदास। ईशादि नौ उपनिषद्। गीता प्रेस, गोरखपुर, संवत् २०७४, छत्तीसवाँ पुनर्मुद्रण।

[xii] उत्तम, अजय कुमार, संपादक। महानिर्वाणतन्त्रम्: कुलावधूत हरिहरानन्दभारतीकृत संस्कृत टीका तथा 'पद्मा' हिन्दी व्याख्या सहित। भारतीय विद्या संस्थान, 2006।

[xiii] रामसुखदास, स्वामी। श्रीमद्भगवद्गीता सचित्र साधक-संजीवनी हिन्दी-टीका। गीताप्रेस, गोरखपुर,2018।

[xiv] उत्तम, अजय कुमार, संपादक। महानिर्वाणतन्त्रम्: कुलावधूत हरिहरानन्दभारतीकृत संस्कृत टीका तथा 'पद्मा' हिन्दी व्याख्या सहित। भारतीय विद्या संस्थान, 2006।

[xv] गोयन्दका, हरिकृष्णदास। ईशादि नौ उपनिषद्। गीता प्रेस, गोरखपुर, संवत् २०७४, छत्तीसवाँ पुनर्मुद्रण।

[xvi] उत्तम, अजय कुमार, संपादक। महानिर्वाणतन्त्रम्: कुलावधूत हरिहरानन्दभारतीकृत संस्कृत टीका तथा 'पद्मा' हिन्दी व्याख्या सहित। भारतीय विद्या संस्थान, 2006।

[xvii] उत्तम, अजय कुमार, संपादक। महानिर्वाणतन्त्रम्: कुलावधूत हरिहरानन्दभारतीकृत संस्कृत टीका तथा 'पद्मा' हिन्दी व्याख्या सहित। भारतीय विद्या संस्थान, 2006।

[xviii] उत्तम, अजय कुमार, संपादक। महानिर्वाणतन्त्रम्: कुलावधूत हरिहरानन्दभारतीकृत संस्कृत टीका तथा 'पद्मा' हिन्दी व्याख्या सहित। भारतीय विद्या संस्थान, 2006।

[xix] गोयन्दका, हरिकृष्णदास। ईशादि नौ उपनिषद्। गीता प्रेस, गोरखपुर, संवत् २०७४, छत्तीसवाँ पुनर्मुद्रण।

[xx] उत्तम, अजय कुमार, संपादक। महानिर्वाणतन्त्रम्: कुलावधूत हरिहरानन्दभारतीकृत संस्कृत टीका तथा 'पद्मा' हिन्दी व्याख्या सहित। भारतीय विद्या संस्थान, 2006।

[xxi] गोयन्दका, हरिकृष्णदास। ईशादि नौ उपनिषद्। गीता प्रेस, गोरखपुर, संवत् २०७४, छत्तीसवाँ पुनर्मुद्रण।